इस अंक में

क्या अध्यापन कौशल है ? इस प्रश्न पर विचार करते हुए पहले डेविड, कार शिक्षा, स्कूलीकरण और अध्यापन के मूल आशयों को विश्लेषित करते हैं। इस विश्लेषण का निष्कर्ष है कि हम अध्यापन की गतिविधि के द्वारा शिक्षा की स्थिति को प्राप्त करने के लिए स्कूलीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं। अवधारणात्मक रूप से जो चीजें अलग अलग हैं वे भी व्यवहार या परिणाम के रूप में एक दूसरे से पर्याप्त सम्बद्ध हैं। बल्कि यह कहने की भी जरूरत कम ही रह जाती है कि अध्यापन का सामान्य पेशेगत हित इसमें निहित है कि इसका महत्व शिक्षा को बढ़ावा देने वाली एक गतिविधि पर केन्द्रित हो। डेविड कार के अनुसार इस लेख का प्रमुख सरोकार अध्यापन की प्रकृति को शिक्षा प्राप्त करने का माध्यम मानने से जुड़ा है। ऐसी स्थिति में अध्यापन की गतिविधि को शिक्षा की प्राप्ति का माध्यम मानने का क्या होगा ? डेविड यह सवाल उठाते हुए कहते हैं कि समकालीन शिक्षाशास्त्रीय सैद्धान्तीकरण की लक्ष्य निर्देशित गतिविधियों को, दक्षता मानने की एक बड़ी प्रवृत्ति ने पीछे छोड़ दिया है, जो कि निश्चय ही आधुनिक प्रयोगवादी मानसिकता के विकास की देन है। बात सिर्फ इतनी ही नहीं है कि कौशल की बात करना आजकल शैक्षणिक तबके के बीच प्रचलन में है बल्कि पेशेगत तैयारी की संकल्पना में भी हाल ही में उल्लेखनीय बदलाव आया है, जैसे कि 'क्षमता आधारित' कार्यक्रम जिसका झुकाव शिक्षण-कौशल के प्रबंधकीय, अनुशासनात्मक व शिक्षाास्त्रीय सहित तमाम पहलुओं को पा लेने की ओर दिखायी देता है। अंतिम विश्लेषण में डेविड कार यह मानते हैं कि शिक्षण-शास्त्रीय कौशल होते हैं लेकिन अध्यापन को सिर्फ ऐसे एक कौशल तक सीमित नहीं किया जा सकता। बल्कि उन्हें ऐसा लगता है कि कौशल के नाम का पेशेवर शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ज्यादा ही इस्तेमाल किया गया है। (खासतौर से अकादमिक शिक्षक प्रशिक्षकों के द्वारा तो यह साबित करने के लिए कम भी इस्तेमाल नहीं किया गया है कि उनके पास अध्यापकीय प्रशिक्षुओं को बताने के लिए शिक्षण-शास्त्रीय महत्व की कुछ चीजें हैं।) और यह महारत जिसे दक्षता के नाम से बुलाया जाना उचित ही है, प्रभावशाली अध्यापन की कोई संजीदा समझ बनाने में अपेक्षाकृत बहुत मामूली सी भूमिका निभाती है।

उनका मानना है कि शिक्षा तथा अध्यापन में कौशल का ज्यादा बेहतर उदाहरण वैज्ञानिक या तकनीकी या तकनीकी इंजीनियरिंग और प्रबंधन की बजाय कलात्मक तथा शिल्पगत अध्यापन के प्रदर्शनकारी पक्षों, खाासतौर से संप्रेषण तथा व्यक्तिगत संबंधों पर ध्यान देकर, अभी बनाया जाना है। लेकिन निश्चय ही यह भी अध्यापन के तकनीक या कौशल के पहलू के स्थान पर फोनेसिस या सद्‌गुण के रखने का ही काम करें। डेविड कार को लगता है कि शैक्षिक अधिकार या कक्षा के अनुशासन को किसी किस्म की प्रबंधकीय तकनीक के पहलुओं को समझने के समकालीन प्रयासों के बावजूद शायद इन्हें अन्ततः नैतिक संबंधों की संदर्भ सापेक्ष शर्तों में ज्यादा बेहतर समझा जा सकता है, जिसके लिए व्यक्तित्व तथा चरित्र के उचित संसाधन ज्यादा महत्वपूर्ण होते हैं। दूसरी ओर यदि हम शिक्षण-शास्त्रीय कौशल की मौजूदा पेशेगत ग्रस्तता से बाहर आ सकें तो हम यह पाएंगे कि शिक्षा और अध्यापन की कहीं ज्यादा गंभीर पेशगत चुनौतियां जटिल बौद्धिक, नैतिक और नियामक सवालों के जाल में निहित हैं, जो किसी भी महज तकनीक आधारित प्रशिक्षण को निःशेष कर सकती है।

भारतीय शिक्षा में परीक्षा एक सामाजिक चयन की प्रतियोगिता आधारित अवधारणा है जो औपनिवेशिक विरासत के रूप में आई है। इसका स्वरूप आज भी कमोबेश वही है जो औपनिवेशिक काल में था। परीक्षा की यह अवधारणा भारत में 19 वीं सदी के अंतिम दौर में लागू की गई । आजादी के बाद

भी भारत में यह उसी रूप में बरकरार रही जिस रूप में औपनिवेशिक काल में थी। ऐसी स्थिति में एक स्वाभाविक सवाल उठता है कि सार्वजनिक परीक्षाएं आजादी के बाद के भारत की आंकाक्षाओं और अपेक्षाओं (सामाजिक न्याय के इर्द-गिर्द भारतीय समाज की पुनर्रचना) को पूरा करने में कैसे समर्थ हो सकती हैं। चूंकि परीक्षा ही आज शिक्षा हो चुकी है अत: इस अर्थ में सम्पूर्ण भारतीय शिक्षा के लिए भी यह प्रश्न प्रांसगिक हो उठता है। इस प्रश्न को ऋतुबाला ने अपने लेख में उठाया है।

आजादी के बाद के इतने वर्षों में गांव-गांव में विद्यालय खुले, अध्यापक नियुक्त हुए व कई प्रोत्साहन भी दिये गये परन्तु महिलाओं की साक्षरता दर में राजस्थान अभी भी भारत के अधिकांश राज्यों से काफी पीछे है। पिछले 50 वर्ष से अधिक समय के प्रयत्नों के बाद भी यहां प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनीन नहीं किया जा सका। आज भी प्राथमिक विद्यालयों में लड़कों की तुलना में लड़कियों की भर्ती कम है और उनमें भी बहुत कम पढ़ाई को आगे जारी रख पाती हैं। चतरसिंह मेहता ने राजस्थान में बालिका शिक्षा के सरकारी प्रयासों का आकलन प्रस्तुत करते हुए इसके अवरोधकों की पड़ताल की है।

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा निर्मित नई पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के जरिये स्कूली शिक्षा में लाए जाने वाले परिवर्तन पर इस लिहाज से तो विचार हुआ कि स्कूली ज्ञान के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विषयों के साथ पेशेवर बर्ताब किया जा रहा है अथवा नहीं । विभिन्न विषयों के अन्तर्गत परोसे जाने वाले तथ्य एवं उसका विश्लेषण, संबंधित अनुशासन की प्रकृति के अनुरूप है या नहीं । पर इस मामले की शिक्षण शास्त्रीय एवं ज्ञानशास्त्रीय विवेचना उपेक्षित रही । चूंकि यह पूरा मामला अलग-अलग दायरे तक सीमित न होकर स्कूली ज्ञानशास्त्र एवं शिक्षण सत्र से पूरी तरह जुडा हुआ है इसलिए बच्चों को केन्द्र में रखकर इसकी शिक्षणशास्त्रीय एवं ज्ञानशास्त्रीय विवेचना का न होना एक गैर जिम्मेदाराना उपक्रम माना जा सकता है। राघवेन्द्र प्रपन्न ने एन.सी.ई.आर.टी. द्वरा प्रकाशित पुस्तकों का शिक्षण शास्त्रीय व ज्ञान शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही तुहिन देव ने इन पुस्तकों में कुछ गंभीर तथ्यात्मक एवं अवधारणात्मक विकृतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

सृजनात्मक विधाओं में नाटक एक 'कम्पोजिट आर्ट' है जिसमें गीत, संगीत, कहानी, संवाद और अभिनय आदि तत्व एक साथ मौजूद होते हैं। ये सभी कारक संयुक्त रूप में ज्यादा प्रभावित करते हैं। राघवेन्द्र रावत ने प्रारंभिक शिक्षा में नाट्य गतिविधियों की महत्ता बताई है। उनके अनुसार रंगमंचीय नाटक प्राथमिक स्तर के छात्रों के लिए उपयुक्त नहीं होते । इस स्तर पर प्रयुक्त नाट्य गतिविधियां बच्चे की नाटकीय क्रीडाओं पर आधारित होनी चाहिए जिनमें वह भिन्न-भिन्न लोगों, पशुओं, मशीनों तथा उन वस्तुओं के रूप धारण कर सकता है जिन्हें उसने गौर से देख रखा है । नम्रता ठाकुर ने छत्तीसगढ़ में बच्चों के खेलों व खेल गीतों पर इस दृष्टि से चर्चा की है कि किस तरह ये बालक बालिकाओं का पारंपरिक रूप में समाजीकरण करते रहे हैं।

आजादी से पहले राजस्थान देशी रियासतों का एक समूह था जिसे राजपूताना के नाम से पुकारा जाता था। इसी के मत्स्य क्षेत्र कहे जाने वाले एक हिस्से की भरतपुर रियासत में शिक्षा की स्थिति के बारे में चन्द्रभानु भारद्वाज कुछ दिलचस्प जानकारियां दे रहे हैं।

ऐसी ही जानकारियां दक्षिण राजस्थान के सुदूर आदिवासी अंचल के एक गांव के स्कूल पर गोपाल सहर के संस्मरण में हैं ।

प्रारंभिक शिक्षा में कथित उपचारात्मक शिक्षण पर एक छोटे अध्ययन का सार (एम. कुमार) इसलिए छापा जा रहा है कि इस पर नवाचारों में लगे शिक्षक विचार कर सकें। मुन्नेश कुमार और जे.पी. बागची ने व्यक्तित्व निर्माण में शिक्षक की भूमिका पर विचार किया है। अंक में युवा कवि मोहन कुमार डहेरिया की कविता 'मताग्रह' पंकज के रेखांकन के साथ दी गई है। ◆